जयभगवान गोयल

-डॉ. बालकिशन शर्मा

सन् 1930 का समय, भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के यौवन-प्रवेश का समय। ईसी सन् मे रावी नदी के तट पर पं. जवाहरलाल नेहरु द्वारा की गई 'पूर्ण स्वराज्य' की प्रतिज्ञा तथा ईसी सन् में अंग्रेजो द्वारा अपने दमन-चक्र के अंतिम प्रमाण के रुप मे सरदार भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव जैसे देशभक्तों को दी गई फाँसी घटना ने देश को झकझोर कर रख दीया। हर आम-खास, पुरुष-नारी, अमीर-गरीब, हीन्दु-मुस्लिम, धर्म-जाति के मन मे बस एक ही जुनून था - - 'आजादी या मौत'। ऐसे देशभक्ति के उन्माद से जो काम क्रान्तिकारीयों ने अपने हथियारो से कीया, वही काम कवियों और लेखको ने अपनी कलम से कीया। ईस सन 1930 और 1931 की अवधि मे माताओ के पेट मे पलने वाली सन्तानो पर भी ऐसी देशभक्ति का प्रभाव पडना ही स्वाभाविक था, क्योकिं हर-एक मा सोचती थी कि उसकी कोख से देशभक्त - क्रान्तिकारी या देश की सेवा करने वाला लेखक पेदा होना चाहीये, जो आनी वाली पीढीयो के लीये एक आदर्श बन जाए। वैसे भी हमारे देश मे तो मा के पेट से ही चक्रव्यूह भेदन-कथा सुनने और बाद मे उसे तोडने वाले अभिमन्यु की परम्परा जीवन्त हे।

ऐसी परीस्थीतीयो में, जीस घर में हथियार की परम्परा थी उनकी नवजात संततियो ने आगे चलकर हथियार उठा लीये और जीन घरो मे कलम ही तलवार थी, उन घर की संततियो ने कलम को हथियार बना लिया। उसी भारत माँ की परतंत्रता की बेडीयो को तोडने की लालसा मन मे संजोये हरीयाणा के - जनपद के छछरौली कस्बे की एक आदर्श नारी के पेट से 30 सितंबर 1931 ई. को एक पुत्र रत्न की उत्पति हुई, जिसका नाम जयभगवान रखा गया। वैश्य परीवार था, मध्यवर्गीय; न ज्यादा अमीर, न ज्यादा गरीब। हथीयार की गुंजाईश तो थी नही, किन्तु कहीं-न-कहीं माँ के खून से साहीत्य और उस समय जेल मे पड़े साहीत्यकारो की सुगन्ध अवश्य आती थी। गर्भस्थ शीशु पर मातृ संस्कारो की प्रबलता रही, परीणामत: नवजात की रुचि, घर के पैतृक व्यवसाय के अपेक्षा, साहीत्यीक रुचीयो की तरफ अधिक रही। पिता तो चाहते थे की बालक घरेलु व्यवसाय को नया रुप देकर अच्छा व्यवसायी बने, कारोबार बढाये; किन्तु विधाता की ईच्छा कुछ और ही थी।

बचपन से ही स्वच्छता, अनुशासनप्रियता, मातृ-पितृ भक्ति, सत्य-संकल्प, प्रभु भक्ति, ईमानदारी, कर्मठता एवं कर्त्तव्य-परायणता जैसे हरीयाणवी संस्कृति-सुलभ संस्कारो के सांचे मे ढले बालक जयभगवान ने अधिकांश संस्कार तो माता-पिता से ही लिए, किन्तु सौभाग्य से दिशा-निर्देश एवं जीवन का पथ प्रशस्त करने वाले गुरुओ का योगदान भी कम नही रहा। अपनी प्रारंभिक शिक्षा अच्छे गुरुओ की छत्र-छाया मे प्राप्त कर जीवन के क्षितिज को छूने का मानचित्र बालक गोयल ने, दसवी पास करते-करते, कुछ खुद बना लिया था, कुछ उस जमाने के शिक्षको ने समझा दिया था। ईस कीशोर की असाधारण प्रतिभा, चंचलता, वाक्पटुता, निर्भिक स्वभाव, दीनो के प्रति करुणा, गुरुओ के प्रति आदर, अपनी बात पर अड जाना, अपराजेय, आत्मविश्वास तथा अपने पक्ष को अकाट्य तर्को से प्रतिष्ठित करना जैसे गुणो ने गुरुओं, माता-पिता तथा रिश्तेदारो को यह सोंचने के लीये वीवश कर दीया था कि यह लडका एक-न-एक दिन असाधारण, अदितीय एवं अनुपमेय अवश्य बनेगा।

जयभगवान गोयल ने 'होनहार बीरवान के होत चीकने पात' की उक्ति को सिध्द करते हुए अपने सीमित साधनो, किन्तु असीमित आत्मविश्वास, के बल पर अपनी यात्रा प्रारंभ की। हर क्षेत्र में स्वावलम्बी रहकर जब सन् 1955 मे नौजवान गोयल ने एम.ए. हीन्दी, पंजाब युनिवर्सिटी, चण्डीगढ से प्रथम श्रेणी मे पास की, तो लोग हतप्रभ रहे गये। ध्यान रहे, उस समय पंजाब युनिवर्सिटी अन्तरराष्ट्रीय यूनिवर्सिटी थी, उसमें पास होना ही गर्व की बात थी, प्रथम श्रेणी तो कुछ ही छात्रो की आती थी। जिस समय युवा गोयल ने एम.ए. हीन्दी पास की थी, उस समय ईस देश मे चार जमात पढे लोग पटवारी, सात जमात पढे तहसीलदार और दरोगा जैसे पदो पर लगते थे। यह हीन्दी भाषा और साहीत्य का सौभाग्य हे की उस समय युवा गोयल जो पद चाहते, वह अनायास ही मिल जाता, किन्तु उन्होने शिक्षण एवं साहीत्य की सेवा के अतिरिक्त कहीं जाने की इच्छा नहीं की; शायद उनमे

माँ के दूध से मिले संस्कार कहीं-न-कहीं काम कर रहे थे। जीवन के कर्मक्षेत्र में पदार्पण करते हुए सबसे पहले, 1962 ई. में, एम.एल.एन. कालेज, यमुनानगर में हीन्दी-प्राध्यापक के रुप में शिक्षक-कर्म का श्रीगणेश किया। बाद मे डी.एम. कालेज, मोगा तथा राजकीय कालेज, लुधियाना में राष्ट्र-निर्माता शिक्षक-धर्म का निर्वाह किया।

डॉ. गोयल में पंजाब युनिवर्सिटी, चण्डीगढ से पीएच.डी. की डिग्री 'गुरुप्रताप सूरज के काव्य-पक्ष का अध्ययन' विषय पर की। इसे विधि का विधान कहे या होनी की प्रबलता, हीन्दी-साहीत्य के भावी इतिहास का इगिंत कहें या पुरुषार्थ की सफलता, 'गुरुप्रताप सूरज' के बहाने डॉ. गोयल को पंजाबी के बहुत- से साहित्य को देखने का मौका मिला। डॉ. गोयल ने पाया कि जिसे लोग पंजाबी का साहित्य समझ रहे हैं, वास्तव मे वह साहित्य तो हीन्दी का ही है, केवल लिपि गुरुमुखी है। बस फिर क्या था, एक-के-बाद-एक ग्रन्थ को हीन्दी -जगत् के सामने रखने का उपक्रम डॉ. गोयल ने आरम्भ किया। साहित्य-जगत् में क्रान्ति आ गई, उथल-पुथल मच गई, पुरानी धारणाओं के प्रतिष्ठापक एवं ख्यातिप्राप्त इतिहास-विशेषज्ञों के ह्रदयों की धड़कनें बढ गई; हिन्दी साहित्य की सहज-सरस प्रवाहिनी भागीरथी में जैसे अचानक उफान आ गया। पुरानी स्थापनाओं और मान्यताओं के ढह जाने का खतरा तो साफ नजर आने ही लगा, साथ ही पंजाबी साहित्यकारों के समक्ष नई समस्या आ खडी हुई कि यदि यह सारा साहित्य हिन्दी मे परिवर्तित हो गया, तो पंजाबी साहित्य का क्या होगा?

डॉ. गोयल ने कभी भी, कहीं भी, अपने इस भगीरथ प्रयत्न या ऐतिहासिक उपलब्धि को अहंकार के साथ प्रस्तुत नहीं किया, अपितु इस स्वर्णिम इतिहास के लिए मैंने (सौभाग्य से मे उनका विधार्थी रहा हूँ), प्रसंगवश, उनके मुख से केवल दो वाक्य सुने - - पहला वाक्य तो यह था कि गुरुमुखी लिपि मे लिखे पर्याप्त ग्रंथों का अध्ययन करने के पश्चात् वे अपनी पीएच.डी से सम्बन्धित 'गुरुप्रताप-सूरज' विषय लेकर जब अपने गुरु आचार्य हजारीप्रसाद दिवेदी के पास पहुंचे तो वे हसकर बोले - 'अरे! इसमें कुछ सार हे भी, या यों ही मत्थापच्ची कर रहा हे?' जब छात्र गोयल ने उन्हे शोध का मानचित्र दिखाया तो वे सहमत हो गए। दूसरा वाक्य, उनके मंजिल-दर-मंजिल पार करने के बाद का हे। अनेक शोध-संगोष्ठियों और साहित्यिक सभाओं मे 'गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी साहित्य' विषय पर अपनी विजय-पताका फहराने वाले डॉ. गोयल को उनके पंजाबी साहित्य के विशेषज्ञ मित्रों ने हँसकर कहा - - 'यार! हमारे सारे साहित्य को अपने हिन्दी-साहित्य में खींच लीया हे, हमारे लिए भी कुछ छोडोगे या नहीं?' डॉ. गोयल ने हँसकर जवाब दिया - 'यार! हमारी चीज़ थी, हमने ले ली, आप क्यों परेशान होते हो? आपको तो खुशी होनी चाहिए, क्योंकि आज आप उऋण हो गए हो।' मित्र मुँह देखते रह गए।

सन् 1964 में ड़ॉ. गोयल कुरुक्षेत्र विश्वविधालय के हिन्दी-विभाग में प्राध्यापक नियुक्त हुए। बाद में, रीडर होकर, आप पंजाब विश्वविधालय के प्रादेशिक केन्द्र, रोहतक मे चले गये। सन् 1980 मे डॉ. गोयल कुरुक्षेत्र विश्वविधालय के हिन्दी-विभाग में प्रोफेसर नियुक्त हुए। यह हरियाणा की धरती पर हिन्दी-विभाग में किसी हरियाणावासी को मिलने वाला प्रथम सम्मान था। यह हरियाणा की संस्कृति एवं साहित्य का सौभाग्य था, हरियाणा की माटी से आनेवाले अनेक अभावग्रस्त छात्रों के भाग्योदय का संकेत था; हिन्दी एवं हरियाणवी में एक भावी क्रान्ति का संकल्प था।

उल्लेखनीय हे कि अन्य प्रदेशों से आये प्रोफेसर, रीडर एवं प्राध्यापक जैसे पदों पर नियुक्त विदानों ने वे ही विषय पाठ्यक्रम में लागु किए, जिनमें वे पारंगत थे। हरियाणवी और उसके साहित्य को, गंवारु और अशिक्षितों का साहित्य कहकर, उपेक्षा कर दी जाती थी। ड़ॉ. गोयल ने हरियाणा के साहित्य और संस्कृति को सम्मान दिलाने का संकल्प लिया और इसे जीवन का मिशन मानकर बहु-आयामी कार्य किया। परिणाम स्वरुप हरियाणा के हिंदी-साहित्य, लोक-साहित्य, संस्कृति तथा पत्रकारिता पर आपका पर्याप्त शोध-कार्य हिंदी की थाली बना। आपने हरियाणा के संगीतकारों, लोककवियों, लोककथाओं तथा लोकोक्तियो पर अपने निर्देशन में जो शोध-कार्य करवाया, उससे भारतीय साहित्य-जगत् में हरियाणा

की एक पहचान बनी। निस्संदेह, मातृ-भाषा एवं मातृ-भूमि के सम्मान को बहाल कराने में डॉ. गोयल का योगदान सदैव प्रथम पंक्ति का अधिकारी रहेगा।

मातृभाषा एवं प्रादेशिक स्नेह की बात तो अपनी जगह ठीक है ही, किंतु, इससे आगे जाकर, जो नवीन क्षेत्र डॉ. गोयल ने चुना, वह अन्य विद्वानों के लिए कल्पनातीत था। रीतिकाल को 'रीतिकाल' का नाम आचार्य शुक्ल ने दिया। प्रमाण-स्वरुप उन्होंने प्रतिष्ठा की कि समस्त कवि-मंडल या तो राजाओं की स्तुतियों में मग्न था या काव्यशास्त्रीय परंपराओं का पालन कर रहा था, अतः इसे रितिकाल कहना उचित है। कुछ विद्वानों ने इसे 'अलंकार काल', 'अलंकृत काल' कहने की भी कोशिश की, किंतु बात आगे नहीं बढ़ी। कुछ विद्ज्जनों ने रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त का आधार लेकर भी विवाद को समाप्त करने की कोशिश की, किंतु डॉ. गोयल ने अपनी शोध-दृष्टि, अकाट्य-प्रमाण एवं विचारबिंदु से हिंदी-साहित्य के सामने नई समस्या रख दी कि क्या पूर्वजों द्वारा लिखा गया साहित्येतिहास ही संपूर्ण और सत्य है? नहीं। क्योंकि उनकी नजरों से सैकड़ों कवियों के वे हजारों ग्रन्थ गुजरे ही नहीं है, जिनके बलबूते पर हिंदी-साहित्येतिहास अपनी पूर्णता का दावा कर सकता है।

डॉ. गोयल का रचना-कर्म इतना वृहद, विस्तृत एवं बहुआयामी है कि उसे देखकर हैरान हो ना तो कोई हैरानी की बात है ही नहीं, साथ ही उन्हें, व्यक्ति न कहकर संस्था का संबोधन भी दे दिया जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनकी असाधारण प्रतिभा कहीं गुरुमुखी लिपि में लिखे सिक्ख-गुरुओं के आदर्शों का मंथन करती है, तो कहीं देश-विदेश के साहित्येतिहास-चिंतकों का सार निकालती है, कहीं सूफी-संतों के प्रेम में उनके अंग-संग नाचती है, तो कहीं हरियाणा के लोकगीतों की पिक-काकली में आकंठ निमग्न होकर 'ब्रह्मानंद सहोदर' रस का आस्वाद करती है; कहीं पुराणो का प्राण एवं हरियाणवी संस्कृति का पावन पर्व 'कुरुक्षेत्र का सूर्यग्रहण मेला' उनके दिल और दिमाग को बेचैन कर देता है, तो कहीं आम की डाल पर बोलने वाली कोयल का माधुर्य उनके 'कवि'-ह्रदय को चीर डालता है। दृश्य देखते ही जीवन का अनुभूत सत्य मस्तिष्क के मस्तिष्क में आते ही स्वतः लेखनी उनके हाथ में चली आती है। जो मन में आया, लिख दिया; फिर पढ़ा, यदि बात कुछ जमी नहीं, तो सारा वाक्य काट दिया; फिर लिखा, फिर कुछ बदला; जब संतुष्टि हुई, तब पास बैठे मित्र, शिष्य अथवा सहधर्मिणी को सुनाया और कहा- 'सच बताना, कैसा लगा? मिथ्या प्रशंसा करने की आवश्यकता नहीं। 'भला इतनी साधना और निष्ठा के बाद निकले शब्द, वाक्य या भाव में भी संशोधन की कोई आवश्यकता हो सकती है! कदापि नहीं! इसी साधना, सात्विकता, सत्यनिष्ठा, मानव-प्रेम व जन्म-जन्मांतर से संचित पुण्यों के परिणामस्वरुप डॉ. जय भगवान गोयल की स्वर्ण-कलम से स्वर्ण-कमलवत् निम्नलिखित रचनाएँ उपजी - -

(क) प्रमुख शोधात्मक ग्रंथ : 1. 'गुरुप्रताप सूरज' के काव्य-पक्ष का अध्ययन, 2. गुरुमुखी लिपि में हिंदी-साहित्य, 3. गुरु गोबिंदसिंह: विचार और चिंतन, 4. वीरकवि दशमेश, 5. मध्ययुगीन काव्य: नया मूल्यांकन, 6. रितिकाल का पुनर्मूल्यांकन, 7 गुरु तेगबहादुर: चिंतन और कला, 8. सूफी दरवेश शेख फरीद और उनका काव्य, 9. साहित्य-चिंतन, 10. महाकवि भाई संतोखसिंह और उनका काव्य, 11. संत-साहित्य नए आयाम, 12. गुरुकाव्य-चिंतन।

(ख) संपादित प्राचीन काव्य-ग्रंथ (विस्तृत भूमिकाओं सहित) तथा अन्य : 1. गुरुशोभा, 2. जंगनामा गुरु गोबिंद सिंह, 3. संक्षिप्त गुरूप्रताप सूरज, 4. गुरु गोबिंदसिंह का वीरकाव्य, 5. वार अमरसिंह, 6. गुरुविलास, 7. गुरु नानक प्रकाश (दो भाग), 8. गुरुप्रतापसूरज (पहला भाग), 9. संक्षिप्त गुरूप्रतापसूरज (पंजाबी), 10. हरियाणा साहित्यकार निर्देशिका, 11. हरियाणा (पुरातत्व, इतिहास, संस्कृति एवं लोकवार्ता)।

(ग) दिल की बात: अंबवा की डाल पे कूके कोयलया

प्रोफेसर जयभगवान गोयल ने लिखा तो इससे भी अधिक है, जिसे ढूंढना, प्रकाश में लाना, हिंदी- साहित्य के उत्तराधिकारियों की प्रथम जिम्मेदारी है। डॉ. गोयल की हिंदी-साहित्य को सबसे बड़ी देन यह कही जा सकती है कि उन्होंने हिंदी-साहित्येतिहास के अधूरे मानचित्र को पूर्णता प्रदान की है । डॉ. गोयल द्वारा गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिंदी-साहित्य को प्रकाश में लाए जाने से पूर्व

हिंदी-साहित्य के जितने भी इतिहास लिखे गए, उनमें इस विपुल साहित्य की तथा इसमें निहित भावधारा की चर्चा नहीं हुई। डॉ. गोयल के ही शब्दों में, "सिक्ख गुरुओं के धार्मिक आदर्शों तथा उपदेशों ने पंजाब के जीवन तथा साहित्य को प्रभावित करके उसके आध्यात्मिक तथा सामाजिक जीवन को एक निर्णयात्मक गति प्रदान की। इस प्रभाव के अंतर्गत पंजाब में पर्याप्त मात्रा में साहित्य-रचना हुई। सिक्ख गुरुओं का जीवन-चरित, उनके धार्मिक तथा नैतिक आदर्श एवं विश्वास ही अधिकतर इन काव्य काव्य-ग्रंथो की विषयवस्तु है। हिंदी के इस अनुपम साहित्य के अध्ययन एवं अनुसंधान की भारी आवश्यकता है।हिंदी साहित्य के इतिहास का सही मूल्यांकन तथा उसकी कतिपय समस्याओं का समाधान भी इस साहित्य को समक्ष रखकर करना ही उचित होगा। वस्तुतः पंजाब में पंजाब में रचित ब्रजभाषा के इस मूल्यवान साहित्य के अभाव में हिंदी-साहित्य का इतिहास सर्वथा अधूरा एवं अपूर्ण है।"

डॉ. गोयल ने जहां गुरुमुखी लिपि में लिखे/उपलब्ध हिंदी के अनेक ग्रंथों को प्रकाश में लाने का महत् उद्यम किया, वही उन कवियों के चिंतन तथा कार्य की समीक्षा भी प्रस्तुत की। इतना ही नहीं, इस साहित्य को हिंदी-साहित्य में सम्मिलित करने का विदज्जनों से अनुरोध करते हुए स्वयं भी अपने दो ग्रंथों - 'मध्ययुगीन काव्य : नया मूल्यांकन' तथा 'रीतिकाल का पुनर्मूल्यांकन' की रचना की। यह दोनों ही ग्रंथ हिंदी-साहित्य के इतिहास को पूर्णता की ओर ले जाने वाले दो साहसिक कदम कहे जा सकते हैं। डॉ. गोयल का अनुसरण करते हुए अनेक विद्वानों की दृष्टि पंजाब में रचित इस साहित्य की ओर गई। उन्होंने भी यथाशक्ति-यथासंभव प्रयास किए, किंतु इस नवीन मार्ग के अनुसंधान का श्रेय सर्वप्रथम डॉ. गोयल को ही जाता है। उनकी साधना, दुर्धर्ष संघर्ष-चेतना और सूक्ष्म दृष्टि हिन्दी-साहित्य अनुरागी के लिए अनुकरण अनुसरण का विषय बनी, इससे अधिक गर्व की और क्या बात हो सकती है?

ऐसा नहीं है कि डॉ. गोयल की दृष्टि और लेखन-शक्ति केवल गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिंदी-साहित्य तक ही सीमित रही हो, अपितु उनका चिंतन बहु-आयामी है। उनके शताधिक शोध-पत्र देश की प्रतिष्ठित शोध-पत्रिकाओं, विश्वकोशों, आकार-ग्रंथों तथा समीक्षा-ग्रंथों में प्रकाशित हुए हैं। इन शोध-पत्रों की विषयवस्तु हिंदी- साहित्य के विविध पक्षों को उत्कर्ष बिंदुओं तक छूती है। उनकी अनुपम कृति 'साहित्य चिंतन' के प्रमाणिक शोध-लेखो-- भारतीय साहित्य में वीर काव्य-परंपरा का प्रवर्तन तथा 'वाल्मीकि रामायण', 'महाभारत' : एक श्रेष्ठ वीर काव्य, संस्कृत-वीरकाव्य का स्वरूप, मध्ययुगीन बोध तथा हिंदी का मध्ययुगीन साहित्य, हिंदी सूफी प्रेमाख्यान : मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन, राहुल जी की साहित्य-यात्रा, खड़ी बोली गद्य का इतिहास : पुनर्विचार, महात्मा गांधी और हिंदी-साहित्य, प्रेमचंद साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप, नाच्यो बहुत गोपाल : विकृति मनोवृतियों का चित्रांकन, समांतर कहानी : महज एक आंदोलन, सक्रिय कहानी और कहानी की सक्रियता आदि शोध एवं समीक्षात्मक लेखो से यह तथ्य स्वतःसिद्ध है कि डॉ. गोयल की लेखनी जहाँ रामायण, महाभारत एवं वैदिक तथ्यों को छूकर प्राचीन भारतीय संस्कृति का मूल्यांकन कर सकती हैं, वहीं मध्ययुगीन बोध और सूफी संतों के साहित्य में उनकी गहरी पेठ हे। वे साहित्य-साधक राहुल जी के उद्धम को भी अपनी लेखनी के धर्म कांटे पर तोलने का साहस रखते हैं, तो भारतीय राजनीति के पितामह गाँधी का साहित्यिक चरित्र भी उनसे छिपा नहीं है। उन्हें खड़ीबोली के गद्य की जन्मपत्री बनाने में महारत हासिल है, तो वे आधुनिक युग में हर सुबह उगने वाले और शाम को अस्त होने वाले काव्य एवं कहानी-आंदोलनो से भी भली- भाँति परिचित हैं। एक सच्चे साहित्य-साधक, समीक्षक, नीर-क्षीर विवेकी विद्वान एवं मानवतावादी सहृदय कवि के सभी गुण डॉ. गोयल में विद्यमान हैं, यह उनकी रचनाओं से प्रमाणित है। रेडियो-वार्ता एवं दूरदर्शन-विमर्श भी डॉ. गोयल की मेधा के ऋणी है। 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सिक्खिज़्म', 'पंजाबी इनसाइक्लोपीडिया', 'हिंदी पत्रकारिता : विविध आयाम' तथा गुरुनानक देव, गुरु तेगबहादुर और गुरु गोबिंदसिंह-स्मृति ग्रंथों में डॉ. गोयल के शोध-लेखों ने अपना एक स्वर्णिम स्थान बनाया है।

ऐसी पाषाण-पद्धति के पुरुष, लौह-संकल्पों के पर्याय, सत्य-शिखरों के पर्वतारोही, अथाह-अगाध-अनन्त साहित्य-जलधि के तल को छूने वाले मनस्वी-तपस्वी की समन्वयात्मक दृष्टि के संबंध में हिंदी-साहित्य के महान् आलोक-स्तंभ डॉ. नगेंद्र ने कहा था कि "उनकी (डॉ. गोयल की) यह निर्भ्रान्त धारणा है कि इस ग्रंथ में हिंदुओं और सिक्खों की जिस सांस्कृतिक एकता का प्रतिपादन

किया गया है, वह आज के युग में देश की भावात्मक एकता के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। भारतीय संस्कृति का इस काव्य में भव्य चित्रण हुआ है और सिक्ख-सिद्धांतों का निरूपण युग परिस्थितियों के परिवेश में किया गया है। वस्तुतः 51829 छंदों में रचित इस वृहदाकार प्रबंधकाव्य के विभिन्न पक्षों को लेकर अनेक शोध-प्रबंध लिखे जाने चाहिए, तभी इसका समुचित और सर्वांगीण मूल्यांकन हो सकेगा। हमारा विश्वास है कि डॉ. गोयल ने जिस अध्यवसाय और निष्ठा से इस ग्रंथ के सांस्कृतिक एवं साहित्यिक सौष्ठव का मौलिक अध्ययन प्रस्तुत किया है, वह अन्य शोधकर्ताओं के लिए मार्गदर्शक बन सकेगा।"

हिंदी-साहित्य के महान् विचारक आचार्य विनयमोहन शर्मा ने डॉ. गोयल के प्रयास की प्रशंसा में ये शब्द कहे - "यह प्रसन्नता कि बात है कि पंजाब के मध्यकालीन साहित्य के अध्ययन की और पंजाब के विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ है। इनके कार्य से गुरुमुखी लिपि में प्राप्त हिंदी-साहित्य के उद्धार में बड़ी सहायता मिली है। इस कार्य का श्रीगणेश कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग के प्राध्यापक डॉ. जय भगवान गोयल द्वारा हो रहा है।"

हिंदी हरियाणवी एवं उर्दू-साहित्य और संस्कृति के सिद्ध-हस्ताक्षर श्री बालकृष्णा 'मुज़्तर' ने डॉ. जय भगवान गोयल के योगदान को 'बिना साहिल का समंदर' कहकर आदृत किया। साथ ही उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए कहा- - "डॉ. जयभगवान गोयल एक तहदार शख्सियत और कई पहलुओंदार व्यक्ति है, जिनकी विद्वता का घेराव व अहाता करना, हथौड़े से पहाड़ तोड़कर दूध की नहर लाने के बराबर है। डॉ. गोयल साफ-सुथरी और कड़वाहट की हद तक साफ बात कहते हैं। दोरंगी जिंदगी जीना उनके लिए हराम है। डॉ. जय भगवान गोयल ने बहुत-सी नायाब किताबें लिखकर और विशेषतः गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिंदी की अमूल्य साहित्य-निधि से हिंदी-साहित्य के खजाने को मालामाल कर दिया है। उन्होंने साहित्य-जगत् में ऐसे-ऐसे झंडे गाड़े हैं, जो चिंतन और खोज करने वालों के लिए निशाने राहे-मंजिल और मील का पत्थर है।"

डॉ. गोयल के साहित्यिक योगदान का मूल्यांकन एवं पुनर्मूल्यांकन तो आने वाली पीढ़ियाँ ही करेंगी, किंतु सौभाग्य से डॉ. गोयल ने इतना साहित्य रचना के बाद, पद और प्रतिष्ठा के चरम शिखर का स्पर्श करने के बाद, भी 'अबंवा की डाल पे कूके कोयलया' शीर्षक निबंध-संग्रह में राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान पुनः अपने बचपन, गोपलीला, बालसखा-संचित स्मृतियों तथा आम के पेड़ पर बोलती कोयल की स्वर- माधुरी का व्यक्तिगत बोध संवरण नहीं कर पाया। क्योंकि बुढ़ापा पुनः बचपन की ही आवृत्ति होती है, इसी के तहत उन्होंने स्वयं जीवन के अंतिम सत्य को इस निबंध-संग्रह की भूमिका में, एक सच्चे साधक की तरह, साहसपूर्वक अभिव्यक्त किया है–"पिछले चार दशकों में मध्य साहित्य से संबंधित और शोध और समीक्षा की मेरी 30 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमे मेरी सौंदर्यपरक, मानवतावादी समीक्षा-दृष्टि प्रचुरता से अभिव्यंजित हुई है। 'साहित्य चिंतन', 'मध्य युगीन काव्य : नया मूल्यांकन' तथा 'सन्त साहित्य : नये आयाम' में मेरे गवेषणात्मक एवं समीक्षात्मक निबंध ही संकलित है। 'अंबवा की डार पे कोयलया' इनसे भिन्न प्रकार की निबंधावली हे। इसमें विचारात्मक, चरितात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक तथा व्यंगात्मक निबंधो के अतिरिक्त रिपोर्ताज, संस्मरण, व्यक्ति-रेखाचित्र, यात्रा-विवरण तथा भेटवार्ताएँ भी समाविशष्ट है। इन सभी रचनाओं में युगबोध के साथ-साथ लालित्य-तत्व भी समुचित रूप से उद्भासित है। 'अंबवा की डार पे कूके कोयलया' मे मैने, स्मृतियों के झरोखों से, अपने जीवन की इंद्रधनुषी छवियों को निहारने की चेष्टा की है। इन रचनाओं में मेरे संवेग, मेरे विचार, मेरी जीवन-दृष्टि, मेरे सरोकार, विश्वास और मान्यताओं का समवेल स्वर व्यंजित हे तथा मेरे व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम प्रस्फुटित हुए हैं। यहां संवेगो में जितनी विविधता है, उतनी ही विविधता इन रचनाओं की भाषा अभिव्यक्ति-शैली और शिल्प में हे। 'अंबवा की डार पे कूके कोयलया' मेरे लिए स्वयं को देखने और समझने का एक आईना है।"

अपने विषय में सब-कुछ यथावत कहने वाले, केवल सच और सच के अतिरिक्त कुछ भी न करने वाले हिंदी के महान् साधक डॉ. जयभगवान गोयल की तुलना, अपने जीवन की त्रटियों को भी

अक्षरशः 'हर्षचरितम्' में लिख देने वाले, संस्कृत के महान् रचनाकार बाणभट्ट से की जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। सत्य का आवरण तो सभी औढ लेते हैं, किंतु आवरण को फेककर वास्तविक सत्य को कहने वाला और स्वीकार करने वाला तो कोई विरला 'महात्मा गांधी' ही होता है। साहित्य के सच्चे साधक होने की कसौटी 'सत्य को लिखना और सहर्ष स्वीकार करना' ही होती है। डॉ. गोयल इस कसौटी पर खरे उतरे हैं। वे जीवन भर मानवतावाद एवं सत्य के लिए लड़ते हुए हर क्षेत्र में विजयी रहे हैं-- क्षेत्र चाहे लौकिक-अलौकिक, आध्यात्मिक-भौतिक, साहित्यिक सांस्कृतिक अथवा कुरुक्षेत्र के महाभारत के हथियार के प्रतिनिधि कलम की धार का युद्धक्षेत्र ही क्यों न रहा हो! इतिहास के दो 'सन्त-सिपाही' भगवान श्रीकृष्ण एवं गुरु गोबिन्दसिंह उनके जीवन के आदर्श रहे हैं। मेरी कामना है कि आदर्शों के आलोक में डॉ. गोयल साहित्य के उच्च शिखरो को छूते हुए, मानवता और सत्य के अभी तक अखुले पन्नो को खोलते हुए, वह ध्रुव-पद प्राप्त करें, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए केवल आदर्श ही नहीं, अपितु दुर्लभ, दुर्गम स्पर्श-बिंदु बनें।